काशी सुमेरूपीठ
और
मठाम्नायोपनिषद्

एक विवेचन

—लेखक तथा प्रकाशक—

ऋतम्भरानन्दाश्रम
सुमेरूमठ वाराणसी

सन् १९८२ ई०

'काशी सुमेरुपीठ और मठाम्नायोपनिषद्' विवेक

[ना]रायणं पद्मभुवं वशिष्ठं शक्तिञ्चतत्पुत्र पराशरंच ।
[व्]यासं शुक गौड पदं महान्तं गोविन्द योगीन्द्रमथास्य शिष्यम्।
श्री शंकराचार्य मथास्य पद्मपादञ्च हस्तामलकं च शिष्यम् ।
तंत्रोटकं वार्तिककार मन्यानस्मद्गुरुन् संतत मानतोऽस्मि ॥

वर्तमान वर्ष १९८२ ई. के पवित्र अर्द्ध कुम्भ के अवसर पंर प्रयाग में दुर्योग से 'काशी सुमेरुपीठ और मठाम्नायोपनिषत्' नाम की किसी तथाकथित स्वामी ऋद्धेश्वरानन्द तीर्थ द्वारा लिखित एवं बितरित प्रचार पुस्तिका हाथ लगी। इसके ऊपर मुख पृष्ठ पर ही कण्ठा कण्ठी पहने दण्डी स्वामियों जैसा प्रच्छन्न दण्ड लिये दाढ़ी मूछ बढ़ाये किसी कपट वेष धारो दुर्दान्त दस्यु अथवा वेष बदले हुए चलचित्र के खलनायक से दीख रहे कुटिल भौंह चढ़ाये एक तथाकथित जगद्गुरू का चित्र छपा हुआ था। चित्रित तथाकथित महात्मा इस 'संस्थान' के सरक्षक हैं जिसके महामन्त्री इस प्रचार पुस्तिका के लेखक तथा वितरक हैं। यह पढ़कर मेरा मस्तक शर्म से झुक गया कि शास्त्रतः जिन सन्यासियों के लिए अपने पूर्वाश्रम के सभी सम्बंधों का परित्याग विहित है उन्होंने संघ और संस्थान बनाया है। शायद सरकार से भूमि-भवन तथा जीवन की सुरक्षा के लिए संघर्ष करने को

हाय रे, कलियुगी दण्डी सन्यासी और उनके संस्थान।

वैसे भी इन लेखक महामन्त्री जी और उनके दीक्षा-दाता गुरुजी के ज्ञान पर प्रकाश 'ऋद्धेश्वरानन्द' इस नामांश से ही पड़ जाता है। लेखक स्वामी के गुरु को संस्कृत व्याकरण का ज्ञान और उसमें भी सबसे सरल दीर्घ सन्धि का भी नियम ज्ञात नहीं था, ऐसा कहने की आवश्यक्ता नहीं अन्यथा वह अपने चेले का नाम 'ऋद्धीश्वरानन्द' रखते न कि ऋद्धेश्वरानन्द। अब उनको प्रौढ़ संस्कृत में लिखे गये वेदान्त, न्याय आदि के ग्रन्थों को समझने की क्षमता का अन्दाज स्वयं ही लग जाता है।

पूरी प्रचार पुस्तिका को पढ़ने से स्पष्ट हो जाता है कि उन्होंने अपने संस्थान के संरक्षक के भय से उनका भी नाम 'सभी सवारों' में गिनाने का भद्दा एव उपहासास्पद प्रयास किया है। एक कहानी है कि चार अश्वारोही अपने अपने सकल लक्षणों से युक्त पुष्ट एवं प्रशस्त परम्परा वाले तुरङ्गों पर सवार होकर कहीं जा रहे थे। संयोग से रास्ते में एक गधे का सवार भी उनके पीछे-पीछे हो लिया चलते चलते रास्ते में किसी पैदल व्यक्ति ने एक अश्वारोही से पूछा भाई सवार! कहां जा रहे हो? इस प्रश्न का उत्तर उसके देने के पहले ही गर्दभ वाहन जी अपनी उत्कृष्टता प्रदर्शित करने के लिए बोल पड़े "हम सब सवार तीर्थ यात्रा को जा रहे हैं।"

यह सुनते ही सभी मार्गस्थ व्यक्ति हंस पड़े, किन्तु उस उत्तरदाता को लज्जा न आई, वह गर्व से आगे बढ़ता गया। बाहरे निर्लज्ज !! यही स्थिति इन महामंत्री जी के संरक्षक जी की चतुष्पीठाधीश्वर जगद्गुरुओं के साथ बनती हैं। यही नहीं इनका तुर्रा तो यह है कि हजारों वर्षों से चले आ रहे चतुष्पीठों की वर्तमान व्यवस्था को भी असंगत ठहराने लगे। दूसरों का सर्षपमात्र भी दोष यद्यपि उसके होने में कोई तर्क नहीं हैं इनको बहुत बड़ा दिखता है और अपना बिल्व प्रमाण कलंक दृष्टिगोचर ही नहीं होता।

पुस्तिका के रुप को देखते हुए स्पष्ट हो जाता है कि उसकी भूमिका अर्थात "ऊर्ध्वाम्नाय काशी सुमेरूपीठः परिचय" तथा शेषांश के लेखकों के रूप में जिन लोगों का नाम हस्ताक्षर के रुप में छपा हुआ है वही धोखा हैं। भूमिका पृ. ५ पर लेखक का नाम पं० रघुनाथ पाण्डेय आदि छपा हैं। इसी प्रकार पृ० १५ पर स्वामी ऋद्धेश्वरानन्द तीर्थ आदि एक जगह पं० तथा दूसरी जगह 'स्वामी' शब्द नामों के पूर्व लगे हैं। ऋद्धेश्वरानन्द की गति निराली हैं वह वह अपने हस्ताक्षर के पूर्व स्वयं १००८ या अनन्त श्री विभूषित आदि नहीं लिखे इसी पर आश्चर्य हैं। उसी प्रकार कम आश्चर्यजनक श्री पाण्डेय जी के नाम के पूर्व पं. पद की योजना नहीं है। यदि यह विख्यात बैदुष्य अम्बाकर्त्री आदि

संस्कृत ग्रन्थों के रचयिता श्री रघुनाथ पाण्डेय जी ही हैं तो वह अपने आप अपने हस्ताक्षर के द्योतक नाम के पूर्व 'पं.' पद नहीं लिखते कोई महामूर्ख भी नहीं लिखता उनकी तो बात ही दूसरी है।

इसके अतिरिक्त भूमिका में प्रतिपादित विषयों को एक एक करके देखने से भी यही सिद्ध होता हैं कि उनके जैसा विद्वान उस तरह की वे सिर पैर की बातें नहीं लिख सकता इससे अनुमान होता है कि संरक्षक जी ने उनके नाम का दुरुपयोग करके अपने मन की भड़ास निकाली हैं। उदाहरणार्थ उसमें निरूपित विषयों में से कुछ पर हम यहां विचार करेंगें।

प्रचार पुस्तिका के पृष्ठ एक पंक्ति २२-२३ तथा पृष्ठ दो पक्ति एक-दो पर लिखा गया हैं स्मार्त सम्प्रदाय और अद्वैत सम्प्रदाय की रक्षा के लिए उन्होंने सर्व प्रथम विद्याकेन्द्र काशी में सुमेरूपीठ की स्थापना की और उसके पश्चात चार दिगन्तों में चार मठों की स्थापना की जो आज भी प्रसिद्धि प्राप्त है।" स्पष्ट हैं कि लेखक ने तथा कथित सुमेरू मंठ को सर्वं प्राचीन सर्बं प्रथम तथा सर्व प्रसिद्ध सिद्ध करनें का असफल प्रयास करके अपनी बुद्धि का दिवाला निकाला है। सबसे पहले सुमेरूमठ और बाद में चार दिगन्तों में चार मठों की स्थापना लेखक ने कौन से आधार पर लिख

दी। 'मठाम्नाय, महानुशासन' के साथ ही श्री पाण्डेय जी के प्रमाणभूत 'मठाम्नायोपनिषद्' में सभी आम्नायों का उल्लेख करते समय जो 'प्रथम' 'द्वितीय' 'तृतीय' आदि क्रम वाचक शब्द प्रयुक्त हुये हैं और तथा कथित ऊर्ध्वाम्नाय के प्रसंग में 'पञ्चमः' पद का प्रयोग है उसका भी अर्थ क्या भू· पू. विभागाध्यक्ष जी की बुद्धि में नहीं आया। उसके लिये भी दशमस्त्वमसि का अर्थ बोध कराने वाले गुरु की भांति किसी ज्ञानी की आवश्यकता है। उक्त प्रसंग में प्रथम, द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थ पद मठों की स्थापना के क्रम के बोधक हैं तथा पंचम षष्ठ तथा सप्तम् पद 'अथ' शब्द के अनन्तर आने से चारों से भिन्न उत्तरोत्तर श्रेष्ठता तथा भावना क्रम के परिचायक हैं। ये क्रम उक्त दोनो ग्रन्थों में निरूपित हैं। उक्त क्रम अर्थ के अतिरिक्त कोई भी अन्य अर्थ इस सन्दर्भ में संगत नहीं होगा।

पृष्ठ २ पंक्ति ३–४ में लिखा गया है सुमेरूमठ विद्या-केन्द्र काशी में विद्यापीठ के रुप में था। वह कालक्रम से विद्या के ह्रास तथा यवनों द्वारा उत्तर भारत के आक्रान्त होते रहने के कारण ह्रास को प्राप्त हो गया..........।" निश्चित ही यह इतिहास लेखक के महाविद्वान पूज्य पिताजी ने अपनी आँखों से देखकर अपने प्रिय पुत्र को बतलाया था

जो अभी तक रहस्य था और अब इदम्प्रथमतया प्रकाश में लाया गया है। आश्चर्य है कि हजारों वर्षों से विभिन्न विदेशी एवं विधर्मी आक्रामकों के अगणित उत्पातों से भी काशी की प्रतिष्ठा और विद्वत्ता तो अक्षुण्ण रही, किन्तु सुमेरूमठ ही उच्छिन्न हो गया और उसकी विद्वत्परम्परा नष्ट हो गयी। लेखक महोदय को यह भी सोचकर शर्म नहीं आयी कि यदि तथाकथित सुमेरुपीठाधीश्वर शंकरा नन्द के पूर्ववर्ती महेश्वरानन्द के अतिरिक्त किसी और भी पूर्ववर्ती आचार्य के नाम बतलाने को कहा जायेगा तो क्या बतलायेगे। क्या इन्हीं के मठ के पूर्ववर्ती सभी आचार्यो की नामावली नष्ट हो गयी और अन्य मठों के महन्थों की ज्यों की त्यों विद्यमान रही, जब कि सत्य यह है कि सन्यासियों से अधिष्ठित सुमेरू नाम का कोई आचार्य पीठ भौतिक काशी में था ही नहीं। अब इसके उच्छिन्न होने का प्रश्न ही नहीं उठता।

जहां तक कालक्रम से विलुप्त प्रायः उस सुमेरूमठ का उद्धार काशी के विद्वानों तथा विश्ववन्द्य, धर्म सम्राट, यति-चक्रचूडामणि अनंत श्री विभूषित स्वामी श्री करपात्री जी महाराज ने किया" वही पृ. २ पंक्ति १२-१४ वाक्य का प्रसंग है। उसके बिषय में मात्र इतना निवेदन है कि काशी के तथाकथित विद्वानों को मात्र दक्षिणा से मतलब है और वे

मुंशी महेशप्रसाद श्रीवास्तव उर्फ महेश योगी का भी चरण स्पर्श करते नहीं अघाते और तथा कथित भगवान रजनीश तेरापंथी जैन के भोग केन्द्रों में रमते और उनका शिलान्यास भी कराते लज्जा का अनुभव नहीं करते। उनका वहां उपस्थित होना आश्चर्य का विषय नहीं है। अभी अभी शंकरानन्द के अभिषेक के समय दक्षिणा लेने वाले काशी के महा पण्डितों ने शहर और देहात में मांग मांग कर लहसुन प्याज और चना खाने वाले एक ओमप्रकाशानन्द को भी काशी सुमेरुपीठाधीश्वर पद पर अभिषिक्त किया है जिसने कानपुर के किसी हरिजन को अपना शिष्य बनाकर उसके यहाँ अपना अड्डा जमाया और कुछ काल के पश्चात उसकी स्त्री को सन्यासिनी बनाकर उसके मकान और उसकी पत्नी का हरण कर घर से निकलवा दिया। जब स्वामी गोविन्द प्रकाश उदासीन को जो राम तीर्थ मिशन के अध्यक्ष थे ओमप्रकाशानंद की इन काली करतूतों का पता लगा तो उन्होंने इन्हें लात मारकर निकाल दिया और कुछ समय के पश्चात शान्तानन्द से इन्होंने सम्पर्क जोड़कर यह अभिषेक का नाटक किया। जिसकी अध्यक्षता सम्पूर्णानन्द सरकृत विश्वविद्यालय के एक भूतपूर्व कुलपति ने की थी और इसके लिये उनको मात्र ५०१) प्राप्त हुआ था।

अच्छा होता यदि ओमप्रकाशानन्द जी हरिजनाचार्य ही

बनकर हरिजनों की सेवा करते पर इन्होंने उन गरीबों को भी नहीं छोड़ा। स्वयं को ज्योतिर्मठ की शाखा काशी सुमेरुपीठ का शंकराचार्य कहकर लज्जा का अनुभव भी नहीं कर रहे हैं जो पहले स्वामी गोविन्दप्रकाश उदासीन के शिष्य बने थे।

जहां तक पूज्य स्वामी करपात्री जी महाराज का प्रश्न है, उसके विषय में भी यह कहना कि पूज्य स्वामी जी १०-१५ वर्षों से पूर्णतः ब्रह्मनिष्ठ रूप में रहते थे, ब्राह्मण गौ और हस्ती में कौन कहे, श्वान और श्वपाक में भी उनकी ब्रह्म-दृष्टि हो गई थी। उनके समक्ष पण्डित और अज्ञानी का भेद समाप्त प्राय था। इसी से उन्होंने पूर्वाश्रम के महान पण्डित स्व. श्री महादेव पाण्डेय को दण्डदीक्षा देकर स्वामी महेश्वरा-नन्द सरस्वती बनाया था। और उनके रहने की समुचित व्यवस्था करायी थी। बाद में उन्होंने सम्भवतः अज्ञानी और श्वपाक में भी ब्रह्मदृष्टि होने से ही शंकरानन्द नामक ऐसे व्यक्ति को धर्मसंघ में सन्यासी बनाकर शरण दी जो बृह्मचारी का वेष धारण करके भी एक विश्वविद्यालय से सम्बद्ध पाठशाला में वेतन लेकर नौकरी करता रहा।

पूज्य स्वामी श्री करपात्री जी महाराज ने काशीपीठ की कल्पना किन परिस्थितियों में किस उद्देश्य से की थी यह विषय भी अन्वेषणीय है। यह तो अकाट्य तथ्य है कि तथा

कथित सुमेरुमठ से उन्हे कोई सहायता नहीं मिल सकी। उल्टें ये उनके सिरदर्द बन गये थे। उनके शिष्य होते हुए भी उनकी निन्दा करते तथा उनसे ऊंचा बैठना चाहते थे। अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए उनके पवित्र नाम को उसमें घसीटना हीनता की पराकाष्ठा होगा।

शंकरानन्द ने स्वामी श्री करपात्री जी महाराज के विरुद्ध दण्डी सन्यासियों का संगठन बनाकर और उनके कतिपय दण्डी सन्यासियों द्वारा उनका विरोध करवाया।

उज्जैन के कुम्भ में पुरी के शंकराचार्य का भी विरोध किया। धर्म संघ के पण्डाल में दण्डी सन्यासियों के भण्डारे में उनको आने से रोका और अलग जलूस निकाला।

पूज्य स्वामी श्री करपात्री जी महाराज के ब्रह्मलीन होने पर उनकी समष्टि में दण्डी सन्यासियों को आने से रोकने में भरपूर किन्तु असफल चेष्टा की। स्वयं को अपने मठ को चारों मठों से ऊंचा और केण्द्रीय मठ कहकर शेष चार मठों को क्षेत्रीय मठ कहकर विघटन उत्पन्न किया और अभी कुछ मास पूर्व ब्रह्मलीन ज्योतिष्पीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य पूज्य स्वामी श्री कृष्ण बोधाश्रम जी महाराज द्वारा धर्माधिकारी पद पर नियुक्त श्री केशव शास्त्री लोकरे और श्री गोविन्दप्रसाद चतुर्वेदी शास्त्री की पदमुक्ति की इस आधार पर असफल घोषणा की कि यह काशीपीठ का क्षेत्र है

हम इन्हें पदच्युत करते हैं। ऐसा करके इन्होंने ब्रह्मलीन जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी श्रीकृष्णबोधाश्रम जी महाराज का भी अपमान किया।

क्या पूज्य स्वामी श्री करपात्री जी महाराज ने इसी उद्देश्य से काशीपीठ की स्थापना की थी।

उसी प्रचार पुस्तिका के पृष्ठ २ पंक्ति २३-२४ में तथा कथित सुमेरूपीठाधीश्वर को 'नव्य न्याय वेदान्त, सांख्ययोगादि शास्त्रों का विशिष्ट विद्वान एवं निबृति मार्गस्थ यतीश्वर कहा गया हैं। उनकी विशिष्ट विद्वत्ता ऊलजलूल बकनें में हो सकती है। न्याय आदि शास्त्रों के विषय में काशी में तो उनकी टर्रं-टर्रं भी किसी ने नहीं सुनी। उनका निबृत्ति मार्गस्थ यतीश्वरत्व इसी से सिद्ध है कि वह अपने प्रचार के लिए विख्यात विद्वानों के नाम का छद्म प्रयोग करते हैं और उस संस्थान के महामन्त्री से अपनी प्रशंसा तथा चित्र छपवाते हैं जिसके वे स्वयं तथाकथित संरक्षक है। मेरे विचार से तो वह वेदान्त तथा सन्यास के अधिकारी ही नहीं हैं। क्यों कि उनमें वेदान्त के अधिकारी के लिये प्रारम्भ के पूर्व ही जिन साधन चतुष्टय की आवश्यकता होती हैं उनमें चारों को कौन कहे एक भी विद्यमान नहीं। मुमुक्षुत्व की वात कौन करे, यदि उनमें इहामुत्रार्थ फल योग बिराग का लेश मात्र भी होता तो वह पीठाधीश्वर की अहंमन्यता और स्वयं को सर्वश्रेष्ठ घोषित करने की मूर्खता नहीं करते।

भूमिका प्रक्यात पं. रघुनाथ पाण्डेय द्वारा लिखित इसलिये भी नहीं हो सकती क्योंकि वह एक ही पृष्ठ पर स्वयं कही हुई बात का खण्डन स्वयं नहीं करते। प्रथम पृष्ठ की अन्तिम पंक्ति तथा द्वितीय पृष्ठ की प्रथम तथा द्वितीय पंक्तियों में उन्होंने सुमेरूमठ की स्थापना को सर्व-प्रथम तथा शेष चारों मठों की स्थापना बाद में बतलायी है और पृष्ठ दो पर ही अन्तिम परिच्छेद में उनका कथन है इस मठ की सुमेरू यह संता इतर चार मठों के मध्य में अवस्थित होने के कारण हुयी।" यहां भू. पू. विभागाध्यक्ष जी को समझ में बात नहीं आयी कि वह अपने पांव में स्वयं कुल्हाड़ी मार रहे हैं। जब तथा कथित सुमेरु मठ 'सर्वप्रथम' स्थापित किया गया तब 'इस मठ की सुमेरूसंता इतर मठों के मध्य में होने के कारण बाद में कैसे हुयी? क्या अद्यः श्री शंकर ने सुमेरूमठ पहले बनाया और नामकरण अन्य चारों मठों के निर्माण के बाद किया। हाय रे चोर की दाढ़ी का तिनका।

पृष्ठ २ की अन्तिम तीन पंक्तियों तथा पृष्ठ ३ के प्रथम अनुच्छेद में विद्वान भू. पू. विभागाध्यक्ष जी ने छपवाया है ' यह सुमेरूमठ काशी तथा कैलास दोनों स्थानों में हैं। क्यों कि इस मठ के आचार्य ईश्वर (महेश्वर) अर्थात शंकर जी हैं। यद्यपि मठाम्नायोपनिषद् में उध्वम्निाय सुमेरू मठ का ही वर्णन मिलता है, किन्तु ऊध्वम्निाय सुमेरूमठ का

काशी सम्प्रदाय हैं यह भी वहां लिखा है। इससे सिद्ध होता है कि दोनों स्थानों के सुमेरूमठों का सम्प्रदाय एक ही हैं क्योंकि इन दोनों मठों के आचार्य ईश्वर (शंकर) एक हीं हैं" । आश्चर्य है कि विद्वान जी को सम्प्रदाय और क्षेत्र का भेद स्पष्ट नहीं हैं । कमसे कम सन्दर्भ के लिये परम्परा ज्ञान के लिये अन्य आम्नायों का मठाम्नाय महानुशासन का भी तत्सम्बद्ध निरुपण पढ़ लिया होता विद्वान लेखक को इस मठ के आचार्य ईश्वर (महेश्वर) अर्थात शंकर जी हैं । लिखवाते समय जिस पद का मात्र अभिधेय अर्थ प्रसगतः प्राप्त था, वहाँ तो अर्थात् करते चले गये, और उसी प्रकार बिना प्रसंग के ही एक मठ को दो स्थानों पर अवस्थित मानने लगे। यदि गृहस्थ होने के नाते श्री पाण्डेय जी को संन्यासियों की परम्परा का ज्ञान नहीं था तो अपने समीप-वर्ती अपने स्वनामधन्य तथा कथित सुमेरूपीठाधीश्वर से ही पूछ लिया होता अथवा यदि पूछा है तो क्या यही अर्थ उनकी आता था, जो न्याय आदि शास्त्रों के ज्ञाता कहे गये हैं । चारों मठ अपने - अपने क्षेत्र में स्थित हैं और कैलास को छोड़कर यह सुमेरूमठ काशी में । वाह रे सुमेरुमठ, वाहरे उशके अधिष्ठाता और वाहरे शुद्ध अर्थ का अनर्थ करने वाले विद्वान । इसके अतिरित्त यदि इस मठ के आचार्य ईश्वर अर्थात शंकर जी हैं तो बीच में मशालची की भांति कूद

पड़ने वाले आप कौन हैं ? वह शिव नहीं हैं ? शिव तत्व अर्थात ब्रह्म के अतिरिक्त और है ही क्या सत्य, ज्ञानी महाराज ! केवल अपने को शिवरुप लेने वाले अहंकार एवं दु:शीलता की प्रतिमूर्ति संन्यास लेने की पात्रता तो रखते नहीं हैं जगद्गुरू बनने का तो कोई प्रश्न ही नही उठता।

यदि इस मठ के संन्यासियों को ॐनमो नारायणाय' इस मन्त्र का जप आवश्यक होता है (वही पृ० ३ पक्ति) तो अन्य मठों के सन्यासियों के लिये क्या विहित है ? उन आचार्यो कें संकल्प वाक्यों के अन्त में लिखा 'ॐ नमो नारायणाय' मन्त्र किसके लिये है ?

"काशी को प्रत्यक्ष देखने से यह स्पण्ट हो जाता है कि इस पुण्य क्षेत्र में समस्त तीर्थ स्थान तथा सभी देवता हैं। अत: काशी में कैलाश मान सरोवर आदि सब स्थान हैं। (वही पृ. ३ पंक्ति १५-१६) लिखकर लेखक नें सुमेरुमठ की स्थिति को नि:सन्देह मात्र प्रतीक और भावना का विषय सिद्ध कर दिया हैं। जैसे काशीस्थ कैलास आदि वास्तविक कैलास आदि के प्रतीक हैं और मात्र भावना के लिये हैं उसी प्रकार सुमेरु मठ भी होगा।

काशी का महत्व होनें से बिद्वान लेंखक नें सुमेरु को भी 'उससे जोड़कर अपने प्रतिपाद्य को उससे भी महत्वपूर्ण सिद्ध

करने का दुःप्रयास किया है। पृष्ठ ३ की पंक्ति १७-१६ में जिस काशी को शंकर भगवान् के त्रिकण्टक पर विराजमान कहा गया है उसके तीनों कण्टक सम्भवतः भूमिका-कार पं. रघुनाथ पाण्डेय, संस्थान के महामंत्री ऋद्धेश्वरानन्द और इनके संरक्षक शंकरानन्द ही हैं अन्यथा शास्त्र चर्चित काशी, अविमुक्त क्षेत्र की यह भौतिक काशी तो मात्र प्रतीक है।

भूमिका के पृष्ठ तीन पर दिये गये पंचम ऊर्ध्वाम्नाय के संकल्पवाक्य 'ॐ' पञ्चमे ऊर्ध्वाम्नायः सुमेरूमठः काशी-सम्प्रदायः जनक याज्ञवल्क्यादि शुक-वामदेवादिजीवन्मुत्ता एतत् सनक सनन्दन कपिल नारदादि व्रह्मनिष्ठाः नित्य व्रह्मचारी कैलासक्षेत्रं मानसरोवरं तीर्थं निरज्जनों देवता, मायादेवी, ईश्वराचार्यः अनन्त व्रह्मचारी शुकदेवः वामदेवा दिजीवन्मुक्तकं सुसंवेद पठनं 'परो रजसे सावदों संतानमनन्तं ब्रह्म' इत्यादि वाक्यविचार............" आदि का जो हिन्दी अनुवाद भ्रष्ट करके पृष्ठ ४ पर छापा गया कि 'पञ्चम स्थान काशी में मेरा ऊर्ध्वाम्नाय अर्थात् पृथ्वी में सर्वोपरि स्थित सुमेरुमठ हैं। मेरा अन्य चार मठों से भिन्न काशी सम्प्रदाय हैं। हमारे इस सुमेरुमठ में पूर्व समय में जनक, उनके गुरु याज्ञबल्क्य, शुकदेव वामदेव आदि जीवन्मुक्त हो गये हैं। इस मठ में सनक, सनन्दन, कपिल नारद आदि

ब्रह्मनिष्ठ हुये। इस मठ में ब्रह्मविद्या का सदा अध्ययन करते हुये नैष्ठिक ब्रह्मचारी रहते हैं क्यों कि मठश्छात्रादिनिलयः यह मठ शब्द का अर्थ बतलाता हैं। अतः विद्या प्राप्ति के अनन्तर विद्वान संन्यासी भी मठ में रहते हैं। इस सुमेरू मठ का काशी में कैलाश नामक प्रसिद्ध स्थान है अर्थात ज्ञानार्जन का क्षेत्र है। काशी का मानसरोवर ब्रह्मतीर्थ तथा ध्यानकाल में आभ्यन्तर मानसरोवर तीर्थ हैं।

इस मठ के उपास्य देव निरन्जन निष्कल्मष (अविद्या सम्पर्क रहित ब्रह्म) हैं, तथा उनकी शक्ति माया देवी हैं। इस मठ के नैष्ठिक ब्रह्मचारियों के उपदेष्टा आचार्य ईश्वर अर्थात् सदाशिव विश्वनाथ हैं। इस मठ में पढ़ने वाले नैष्ठिक ब्रह्मचारियों की संख्या अनन्त हैं। इस मठ में शुकदेव, वामदेव आदि जीवन्मुक्तों का सर्वजनसंवेद्य (जिसे सब लोग जानते हैं) प्रपठन (प्रकृष्ट पठन) अर्थात् स्वाध्याय हुआ..............
आदि, वह कहां तक संगत है इस पर विचार संस्कृत भाषा का सामान्य ज्ञान भी रखने वाला व्यक्ति कर सकता है। एक एक पद का अर्थ समझाना तथा लिखना और विद्वान भूमिकाकार महामन्त्री और संरक्षक महोदयों का ज्ञान उजागर करना थोड़े से स्थान में सम्भव नहीं ?

मठाम्नायोपनिषद् में निर्दिष्ठ नियमों के अनुसार आज भी इसके प्रवर्तक आचार्य श्री विश्वनाथ मरने के समय

अध्यात्म विद्या का उपदेश करते हैं और उनके प्रतिनिधि .... शंकरानन्द जी ने सिद्ध करना चाहा हैं कि जिस प्रकार एक तेरा पन्थी जैन अपने को भगवान बनवाकर विदेशियों से पूजा करवा रहा है, जिस प्रकार एक वर्णाश्रम बिरोधी कायस्थ द्वेषी महेशप्रसाद श्रीवास्तव महर्षि और योगी बन बैठा, उसी प्रकार यह भी अपने को विश्वनाथ का अवतार घोषित कर पाखण्डियों की कतार बनाना चाहता है। क्या इसकी आत्मश्लाघा एवम् मिथ्याभिमान से यह नहीं स्पष्ट होता कि चतुष्पीठाधीश्वर तो शंकराचार्य के मात्र प्रतिनिधि हैं और यह दस्युराज ही साक्षात् शंकर हैं। कहीं यह भी उक्त भगवानों और महर्षियों के एजेन्ट तो नहीं हैं ?

दुराग्रहों को निरुपित करने के बाद चर्चित पुस्तिका के पृष्ठ छह से नौ तक चार पृष्ठों में तथा कथित 'मठाम्नायोपनिषद् का मूल तथा उसका हिन्दी अनर्थ दिया गया है। इसके अनुवादक का नाम नहीं छापा है। सम्भव है सरल संस्कृत भाषा में लिखे वाक्यों का अत्यन्त भ्रष्ट अर्थ देंने के कारण लेखक को अपना नाम देने में संकोच हुआ होगा। अथवा भगवान विश्वनाथ ही लिख कर अन्तर्धान हो गये होंगे।

प्रचार पुस्तिका के पृष्ठ १० से १५ तक स्वनामधन्य स्वामी ऋद्धेश्वरानन्द तीर्थ ने 'मठाम्नाय विमर्श' में अपने

विवेक का परिचय दिया है। प्रारम्भ करते ही उक्त तीर्थ जी मठों के विषय में कहते हैं........" आद्य शंकराचार्य द्वारा संस्थापित मठों के विषय में विभिन्न लोग विभिन्न प्रकार की युक्तियों को उपस्थापित करते हुये स्वाभिमत मठ को ही प्रस्थापित बतलाया करते हैं।" यह उक्ति अन्य वास्तविक आचार्यों के विषय में निश्चित ही नहीं चरितार्थ होती क्योंकि वे तर्क और प्रमाण से अपनी बातें पुष्ट करते हैं और उनके पीछे एक पुष्ट एवं प्रसिद्ध परम्परा तथा इतिहास है किन्तु यह वाक्य उक्त तीर्थ जी के हृदयस्थ दुराग्रह को अवश्य प्रकट करता है।

महामन्त्री तीर्थ जी ने 'मठाम्नायोपनिषद्' को अपने मठ के प्रतिपादन में आधार भूत प्रमाण ग्रन्थ माना है और उसके पाठादि को स्वेष्ट रूप में प्रकाशित किया है जबकि आद्य शंकराचार्य द्वारा प्रणीत 'मठाम्नायमहानुशासन' अथवा 'मठाम्नायसेतु' को अपने गढ़े गये पाठान्तरों से युक्त कहा है। जबकि वास्तविकता उससे सर्वथा भिन्न है। वस्तुतः 'मठाम्नायोनिषद्' न तो आद्य श्री शंकराचार्य द्वारा रचित है और न उसकी उपनिषत्प्रामाणिकता ही है। यह तथा कथित उपनिषद् उसी प्रकार अप्रमाणिक एवम् अमान्य है जिस प्रकार मोतीलाल बनारसीदास प्रकाशन संस्था द्वारा इदम्प्रथमतया इस उपनिषद् के साथ छपा अल्लोपनिषद्"।

उपनिषद् शब्द मात्र की योजना से कोई भी सनातनी जिस प्रकार 'अल्लोंपनिषद्' को प्रमाण नहीं मानता, उसीं प्रकार मठाम्नायोपनिषद् को भी किसी के द्वारा मान्यता केवल बात पर नहीं मिल सकती क्योंकि उसके नाम के साथ उपनिषद् और रचयिता के स्थान पर 'शंकराचार्य का नाम जोड़ दिया गया है।

वेदान्त के कठिन एवं दुर्बोध विषयों को अनेक प्रकार से सुगम्य बनाने के लिए आचार्य शंकर ने वेदान्त विषयक अनेक ग्रन्थों को अनेक आकारों में लिखा। उसकी आवश्यकता थी किन्तु वही बात 'मठाम्नायमहानुशासन' के विषय में लागू नहीं होती। यह ग्रन्थ मठों का संविधान है। संविधान में न पाठान्तर होता है और न उसके संक्षिप्त संस्करण बनाये जाते हैं। यद्यपि 'मठाम्नाय महानुशासन तथा मठाम्नायोपनिषद् में विषय भेद वहुत नहीं है तथापि जो है वह भी विवेकी को मान्य नहीं हो सकता। प्रत्येक विषय को मठाम्नाय महानुशासन में इतना स्पष्ट कर दिया गया हैं कि पुनः एक पृथक उपनिषद् की रचना अपेक्षित नहीं। बहुत से लोगों ने अपने लिखे ग्रन्थों को प्रसिद्ध पूर्ववर्ती महापुरुषों के नाम घोषित करने की धृष्टता की है। यदि एक क्षण के लिये इस उपनिषद् को प्रमाणिक मान भी लिया जाय तो भी तथा कथित ऊर्ध्वाम्नाय पंचम से प्रथम अथवा

सर्व प्रधान है ऐसा किसी भी शब्द से सिद्ध नहीं होता। संक्षिप्त होने के कारण 'मठाम्नायमहानुशासन' के समान न तो इस उपनिषद् में बहुत स्पष्टता हैं और न अन्य विवादास्पद विषयों पर प्रकाश ही पड़ता है।

'मठाम्नाय बिमर्श' के अंश में ऋद्धेश्वरानन्द ने पृष्ठ १० के द्वितीय अनुच्छेद में लिखा हैं कतिपय लोगों का कथन हैं आम्नाय मठ केवल चार हैं। यह उक्ति आचार्य शंकर द्वारा रचित मठाम्नायोपनिषद एवं सेतु के विरुद्ध है। इसके प्रमाण के लिए उन्होंने 'श्रीमज्जगद्गुरु शांकर मठ विमर्श' नाम के एक ग्रन्थ का कुछ अंश अपने पक्ष में प्रस्तुत किया हैं। उनकी बातों में केवल इतना सत्य है कि मठाम्नायोपनिषद् तथा सेतु में परिगणित सात मठों में से एक नाम सुमेरूमठ का भी है किन्तु यह सत्य है कि सुमेरूमठ आचार्य पीठ नहीं है क्योंकि इनके आचार्य पीठ होने का उल्लेख न तो उक्त 'उपनिषद्' में है और न 'सेतु' में ही।

विद्वान लेखक ने 'सेतु' के उस श्लोक को जिसमें सुमेरू, आत्म तथा निष्कल को 'विज्ञानैक विग्रहा:' उल्लिखित किया गया है, पाठान्तर बतलाया है। इसको तोड़ मरोड़ कर 'विज्ञानैक गोचरा:' रुप में उल्लिखित भी क्रिया है। यह इनका सौभाग्य ही था इनका सत्कृत्य कि जो सेतु इनको

देखने को मिला, केवल उसी प्रति में यह श्लोक नहीं मिला, उस पूरे श्लोक को यह "अवश्य ही आधुनिक एवं प्रक्षिप्त है ......"। (वही पृ० ११) ऐसा मानते हैं। वाह रे स्वामी महामन्त्री जी, धन्य है आपकी बुद्धि। मीठा मीठा गप और तीता तीता थू। आद्य श्री शंकर भगवत्पाद के वचनों को अपने स्वार्थं का पूरक न पाकर उसे आधुनिक और प्रक्षिप्त घोषित करते समय संकोच भी नहीं हुआ, लज्जा भी नहीं आई ? खैर संकोच और लज्जा आप जैसे महात्माओं का विषय ही कहां ? श्लोक को प्रक्षिप्त और आधुनिक कहकर आपने आंख में धूल झोंकने का अपराध तो किया ही, किन्तु क्या सेतु में लिखित श्लोकों, जैसे—

मर्यादैषा सुविज्ञेया चतुर्मठ विधायिनी।
तामेतां समुपाश्रित्य आचार्याः स्थापिताः क्रमात्॥
(शृ. म. ११॥

तथा—आम्नायाः कथिताह्येते यतीनांच पृथक् पृथक।
ते सर्वे चतुराचार्याः नियोगेन यथा क्रमम्॥
प्रयोक्तव्याः स्वधर्मेषु शासनीयास्ततोऽन्यथा।
कुर्वन्तु एव सतत मटन धरणी तले॥ (महानु० १२)

में 'चतुर्मठविधायिनी' चतुराचार्याः सदृश अनेकशः प्रयुक्त पदों को आपकी बूढ़ी आंखें नहीं पढ़ सकीं, चश्मा कहीं खो गया था अथवा आंखें ही कहीं चरने चली गयीं थी।

इसमे आपका कौन सा न्याय लगा ? 'दृष्टिगोचर' पद का अर्थ दर्शन का ही नहीं सामान्य संस्कृतज्ञ भी जानता है। उसका अर्थ बोध कराने के लिये आपको अपने हेत्वाभासों को उपस्थित कर वाग्जाल रचने की क्या आवश्यक्ता पड़ी। धन्य हैं आप भी स्वामी जी महाराज, शब्द का अर्थ आता नहीं और चल पड़े न्याय बघारने।

विद्वान स्वामी जी पृष्ठ ११ पर लिखते हैं ज्ञानगोचर मठ की तथाकथित कल्पना सर्वथा अयोक्तिक है। पाटक विचार करें, यदि तीन मठ ज्ञान गोचर हैं, तो क्या अन्य मठ अज्ञान गोचर हैं। यह मत अर्थतः सिद्ध हो जाता है। अतः अन्य चार मठ अज्ञानगोचर होने के कारण अप्रमाण एवं अग्राह्य हो जायेगे। उक्त पंक्तियों को पढ़ने वाले सामान्य बुद्धि के लोग भी बिद्वान स्वामी जी की तर्कशक्ति, तर्कशास्त्र के ज्ञान और धूल की रस्सी वटने के प्रयास का अन्दाज आसानी से लगा सकते हैं। पूज्य स्वामी जी के पास एक ऐसा भी न्याय शास्त्र का प्रौढ़ मौलिक, एवं नवीन स्वरचित न्याय ग्रन्थ हैं, जिसमें अज्ञान गोचरता भी एक प्रमाण है। उनको इस अनोखे प्रमाण के आविभाव के लिये बधाइयां।

अपनी महनीय कृति के पृष्ठ १२ पर महानैयायिक स्वामी जी महा वैयाकरण भी हो चले हैं। पाणिनि, कात्यायन और पतंजलि को मरे बहुत दिन हो गये, अतः

इस मनीषी का जन्म संस्कृतोद्धार के लिये अपरिहार्य था। धन्यवाद है आपको स्वामी जी मठ शब्द की आपकी व्युत्पत्ति के लिये। क्या आपके अभिध्य के आगे भी किसी शब्द शक्ति का परिचय पाया है ? निःसन्देह नहीं, यदि वेदान्त ही पढ़ा होता तो उसमें प्रतिपादित लक्षणा और उसके दोनों भेदों का नाम तों सुन ही लिया होता। जब आपने न पढ़ा न सुना तो उसका उल्लेख ही क्या किया जाये, यहां लिखकर आपको पढ़ाने के लिये न समय है और न आपकी समझ में ही आयेगा। यदि कभी वैसा होगा तो जान सकेगे कि सन्दर्भ आदि भेद से एक ही शब्द का अर्थ भिन्न भिन्न हो जाता है। यदि आप 'मठश्छात्रादिनिलयः अर्थ करते हैं तो आत्माम्नाय तथा निष्कलाम्नाय के साथ प्रयुक्त 'परमात्मामठ' और 'सहस्त्रार्कद्युति' मठ का क्या अर्थ होगा शायद वह आप जैसे छात्रों का निलय होगा। भगवत्पाद आद्यशंकर द्वारा प्रयुक्त पद 'वैज्ञानैक विग्रहा' आपको तथाकथित कल्पना और सर्वथा युक्ति एवम् मठाम्नायोपनिषद् से बहिर्भूत होने के कारण अप्रामाण्यज्ञानास्कन्दित तथा अग्राह्य है' (वही पृ० १२) और अपनी मुर्गी की एक टांग आपको पूर्णतः सगत तथा ग्राह्य है। जिस आचार्य ने नाम पर कमाई करके प्रतिष्ठा अर्जित करना चाहते हैं, उसी के द्वारा लिखित होने पर भी एक ही विषय की वह संक्षिप्त पुस्तक जिसमें पूरे विषयों का सर्वांगीण समावेश नहीं हो पाया, आपका प्रमाण

हैं, और दूसरा ग्रन्थ जिसमें सभी छोटी बड़ी बातें हैं आपके लिये अप्रामाणिक हो गया निःसन्देह आपकी बुद्धि भैंस से भी बड़ी है। बुद्धिमान स्वामी जी की प्रक्षेप की कल्पना इस लिये भी असंगत है क्यों कि प्रक्षेप्ता को इससे कोई लाभ नहीं है। प्रक्षेप मानना तो तब उचित होता जब शेषाम्नाय के तीन मठ भी परम्परागत आचार्य पीठ होते और उनको प्रथक सिद्ध करने के लिये इसे प्रक्षिप्त करते। वस्तुतः शेष तीनों का अस्तित्व ही परवर्ती हैं, ज़ब कि उक्त श्लोक पूर्व-वर्ती है।

महामन्त्री स्वामी को जानना चाहिये कि 'सेतु' के श्लोक--

'अथोर्ध्वं शेषाम्नायास्ते विज्ञानैकविग्रहाः में 'अथ' पद आनन्तर्य का बोधक है। यह पूर्ववर्ती से परवर्ती को पृथक करता है इससे व्यक्त होता है कि प्रथम चार मठ एक कोटि के हैं और शेष तीन एक कोटि के। 'अथ' के प्रयोग का प्रयोजन पूर्वापर में वैलक्षण्य का ज्ञापन है। यदि सातों मठ समान होते तो इसके प्रयोग की कोई आवश्यकता ही नहीं होती। वैलक्षण्य यही है कि प्रथम चार मठ ऐसे हैं जिनमें आचार्य प्रतिष्ठित होते हैं और शेष तीन ऐसे हैं जो 'विज्ञा-नैक विग्रह' हैं। अर्थात ये केवल भावना के लिये हैं, प्रतीकात्मक हैं। यहां विज्ञान का अर्थ वही लेना चाहिये जो

विद्यां चाविद्यां च' आदि श्रुतियों की व्याख्या में भगवत्पाद शंकर ने किया है। उन सन्दर्भों के अनुसार विज्ञान का अर्थ उपासना लिया जा सकता है। यही बातें आत्म और निष्फल आम्नायों के भी विषय में संगत है।

प्रथम चारों पीठों के अतिरिक्त सुमेरू आदि मठ अनेक कारणों से आचार्य पीठ नहीं हो सकते। गिनने पर स्पष्ट हो जाता है कि प्रथम चार पीठों के आम्नाय, प्रथम, द्वितीय आदि स्थापना के क्रम, स्थिति की दिशा, मठनाम सम्प्रदाय सन्यासी का पद क्षेत्र, देव, देवी, प्रथम देशिक, तीर्थ ब्रह्म-चारी, वेद, महावाक्य तथा अर्थ विचार, गोत्र शासित देश आदि १५ विषयों का उल्लेख 'मठाम्नायमहानुशासन' में है। इसी के लगभग मठाम्नायोपनिषद् में भी अनेक विषयों का उल्लेख है। इनमें से सुमेरू मठ के ब्रह्मचारी महावाक्य, गोत्र अन्तर्गत देशों का नाम, सम्प्रदाय ब्रह्मचारी आदि का व्युत्पत्तिगत अर्थ अन्य आम्नायों की भांति मठाम्नायमहा-नुशासन में नहीं मिलता 'उपनिषद्' के संक्षिप्त होने से इनके मिलने का प्रश्न ही नहीं उठता। आत्म तथा निष्फल आम्नायों के तो और विवरण भी कम ही होते गये हैं। प्रथम चारों मठों के जो जो तत्व स्थूल दृष्टि से गोचर हैं, उनका तो नहीं किन्तु जिसके नाम किसी उद्देश्य से कल्पित किये गये हैं, उन सम्प्रदायों आचार्यों के नामों ब्रह्मचारियों

आदि के नामों की निरूक्ति भी दी गई हैं। सुमेरु आदि का कोई भी अंश स्थूल दृष्ट्या गोचर न होने से कुछ कुछ छोड़ने का तो प्रश्न ही नहीं उठता, महत्त्वहीन होने के कारण उनके नामों की व्याख्या भी नहीं की गयी है। अथवा इनके नामादि प्रचलित परिभाषिक शब्द होने से अन्य अर्थो में ग्रहीत नहीं होंगे, ऐसा सोचकर आचार्यपाद ने उसकी व्याख्या को व्यर्थ समझकर छोड़ दिया होगा। यदि शेषाम्नायों से सम्बद्ध आचार्य आदि को नामों का प्रतीकात्मक्र अथवा परिभाषिक अर्थं न लिया गया तो भौतिक अर्थ उत्पन्न ही नहीं हो सकेगा सम्प्रदाय का नाम तो प्रथत चारों मठों का भी प्रतीकात्मक ही है। अतः सुमेरु मठ से सम्बद्ध काशी सम्प्रदाय भी 'काशते इति काशी' ही लेना चाहिये न कि कोई स्थान विशेष। इसी प्रकार निरन्जन देवता मायादेवी ईश्वर, आचार्य मानस तीर्थं आदि मी स्थूल एवम् भौतिक तथा अन्य सम्प्रदायों के देवता आदि जैसे नहीं लिये जा सकते। सुमेरुमठ के लिये 'सूक्ष्मवेद' नाम का कौन सा वेद हो सकता है ? चारों पीठों के आदि आचार्य शंकराचार्य के पट्टशिष्य का नाम नहीं था और न वे स्वयं अपने लिये ही ईश्वर पद का प्रयोग कर सकते थे। इसी अर्थ के असंगत होने से ही ऋद्धेश्वरानन्द ने ईश्वर को साक्षात विश्वनाथ मानकर अर्थ किया है। निरन्जन और माया भला कौन से

उपासनीय देव और देवी का नाम हैं? उनका आकार विग्रह कौन सा होगा ? निःसन्देह ये भावना मात्र के लिये हैं, पूजा अर्चा के लिये नहीं। आत्मा और निष्कल मठों के नामों से भी स्वयं ही प्रकट है कि इनकीं कोई भौतिक स्थिति नही है, इनसे सम्बद्ध अन्य विषयों की तो बात ही क्या ? प्रथम चारों आम्नाय चार दिशाओं में स्थित हैं, उनके चार प्रसिद्ध क्षेत्र हैं जो भारत के निश्चित भूभाग पर अवस्थित हैं। उर्ध्वआम्नाय नाम के अनुसार उर्ध्व दिशा में होना चाहिये क्योंकि पश्चिमाम्नाय पश्चिम में, उत्तराम्नाय उत्तर में और इसी प्रकार अन्य दो आम्नाय पूर्व और दक्षिण में क्रमशः विद्यमान है। उर्ध्वदिशा आकाश हैं जो नियमत न तो भू प्रदेश है और न वहां कोई स्थूल मठ ही बन सकता है, अतः सिद्ध है कि वह मात्र भावना के लिये निदिष्ट हैं। अथवा यदि तथाकथित सुमेरू मठ के महन्थ हवाई नगर या मठ बना लें तो बनायें, उसमें रहें और अपनी विलक्षण त्रिपुरासुरी कारीगरी का परिचय दे। बेचारे आत्म और निष्कल आम्नायों को तो न कोई दिशा मिली है, और न कोई स्थूल नाम ही सुमेरु आदि इसलिये भी आचार्य पीठ नहीं हो सकते क्योंकि इनके आचायों का नाम दशनामों में से कोई नहीं है। सन्यासियों के दश नाम है गिरि, पुरी, भारती, सरस्वती, वन, अरण्य, सागर, पर्वत, तीर्थ तथा आश्रम। इनमें से तीर्थ तथा आश्रम शारदामठ के वन और

अरण्य गोवर्धन मठ के, गिरि, पर्वत और सागर ज्योर्तिमठ से तथा सरस्वती, भारती और पुरी श्रृंगेरी के साथ है।

तथा कथित सुमेरूपीठाधीश्वर जी के चरण सेवक महामन्त्री जी बतलासकते हैं कि इनमें कौन से पद उनके मठ के हैं ? यदि अपने उपनिषद् तथा 'सेतु' में उल्लिखित सत्य और ज्ञान नामक पदों को अपना मानते हैं तो क्या यही उनका नाम है ? क्या ये इन्हीं अर्थों में दशनामियों में से किसी को मान्य है ? क्या इनका अर्थ संन्यासी के पद के लिये स्वीकार करना सम्भव होगा ? निश्चित ही नहीं। अतः सिद्ध हैं कि ये नाम मात्र भावना के लियें है। सत्य और ज्ञान पद वाले किसी भी सन्यासी की कोई परम्परा भारत में प्राप्त नहीं है।

'अपने मुंह मिया मिट्ठू' बनने वाले महामन्त्री स्वामी अपनी कृति के पृष्ठ १२ पर काशी को त्रैकालिक सांस्कृतिक राजधानी घोषित करते हैं और अपने आका 'संरक्षक' के मठ को आचार्य शंकर द्वारा स्थापित। उस पर गर्व इतना करते हैं मानो यह या उनके संरक्षक ही काशी के महाराजाधिराज हों और युग - युग से चले आ रहे काशी नरेश उनके नौकर रहे हों जिनको झूठे ही लोगों ने काशी नरेश कह दिया। निःसन्देह काशी का अपना महत्व है किन्तु यदि यही सब कुछ भी है और रहेगी तो सप्तपुरियों में परिगणित अन्य

मोक्षदा नगरियां क्या आपकी काशी की नाबदान हैं ?

वास्तविकता यह हैं कि सुमेरुमठ की कभी भी आचार्य पीठीय परम्परा नहीं रही है। यहां एक मठ था अवश्य किन्तु उसके प्रधान महन्थ होते रहे हैं, आचार्य नहीं प्रसन्नता की बात हैं कि वह मठ आज भी बाराणसी में डी० ३४। १२३ गणेश महाल में अवशिष्ट है। उसके वर्तमान महन्थ दण्डि स्वामी आनन्द बोधाश्रम जी महाराज हैं। उनके राजगुरु सुमेरूमठस्थ मठाम्नाय: में तथा उसकी वंग भाषा में विरचित व्याख्या में दिये गये तथ्यों के आधार पर ऋद्धेश्वरानन्द तथा उनके संरक्षक महाराज कीं सारी कलई खुल जाती है। वहां के शब्द इस प्रकार हैं :—

सुमेरूमठनाम्ना वा पादुकामठनामतः ।
बाराणस्यां मठोऽयं हि सुप्रसिद्धि मुपागतः ॥२॥
सुमेरूमठ शाखाखात्वात् पूर्वं नाम कृतं जनैः ।
यतीनां वासतश्चात्र दण्डिनाँ वर्णिनाँ तथा ॥२॥
मोहान्तानां तु सर्वेषां पादुका रक्षणात तथा ।
द्वितीयनामतोऽयं तु सुप्रसिद्धि मिहागतः ॥३॥
आचार्य शंकरस्य श्रीपादुकें इह रक्षिते ।
तथैव रक्षिता यत्नात प्रतीचामत्र पादुका ॥४॥
तेषां 'मोहान्त' पदवी प्राप्ति कालश्च लिख्यते ।
प्रथमादिक्रमाद् ग्राह्या खीष्टाब्दीमृशताब्दता ॥५॥

अन्त्यात् पूर्वपूर्वतरा सर्वेदत्रत्य मठेश्वराः ।
तीर्थोपनामकाश्चासंस्त्वन्त्य आश्रम नामकः ॥६॥
मोहान्तानां तीर्थनाम्ना पारम्पर्यविनाशतः ।
मठस्यास्य शिष्यवर्गैरनुरूध्याभिषिच्यते ।
अन्त्यस्त्वाश्रमनामायं योऽत्रेदानीं विराजते ॥८॥

इसी प्रकार के ४१ श्लोकों में ८२७ ई० में आसीन प्रथम महन्थ श्रीमत् महादेवानन्द तीर्थ से लेकर १६५६ ई. में आसीन श्रीमत्स्वामी आनन्दबोधाश्रम तक के ६१ महन्थों के नाम दिये गये हैं। यह ग्रन्थ भी तब छपा था सन् १६५६ ई. में जब न तो वर्तमान धर्मसंघ दुर्गाकुण्ड में स्थित तथाकथित सुमेरूपीठ पूरे क्रम में सिवाय महन्थ के शंकराचार्यं नाम कहीं भी उल्लिखित नहीं हैं। श्लोक संख्या २-३ की वंगभाषामयी व्याख्या में लिखा है कि यह मठ द्वारकास्थ सुमेरूमठ की शाखा थी अतः परम्पराक्रम से दण्डि स्वामी और उनके नैष्ठिक ब्रह्मचारी यहां वास करते रहे, और उसी आधार पर इसका नामकरण हुआ। सातवे श्लोक की व्याख्या में है कि अन्तिम मठाधीश्वर से पूर्ववर्ती सभी महन्थों का उपनाम तीर्थ था और वर्तमान का नाम 'आश्रम' है क्योंकि 'तीर्थ' नामक महन्थो की शिष्य परम्परा विनष्ट हो गयी थी। इस मठ के महन्थो ने शालीनता का निर्वाह किया और कभी भी अपने नाम के साथ शंकराचार्य पद का

प्रयोग नहीं किया सदा आद्य श्री शंकराचार्य तथा उत्तरवर्ती महन्थों की पादुकाओं को सुरक्षित रखते हुये इस मठ का अपरनाम 'पादुका मठ' के अन्वर्थ करते रहे। एक ये हैं और इनकी विनम्र परम्परा तथा दूसरे हैं नम्बर दो के तथाकथित सुमेरूपीठाधीश्वर जो शंकराचार्य से बढ़ते - बढ़ते साक्षात् विश्वनाथ शंकर भगवान बन बैठे। धन्य हैं ॠद्धेश्वरानन्द और उनके मालिक शंकरानंद।

उपर्युक्त तथ्य से यह निष्कर्ष निकलता है, जहां तक गणेश महाल में स्थित सुमेरु मठ का प्रश्न हैं, वह उसी प्रकार है जैसे आज अनेक मठों का हैं, अर्थात एक स्थान पर एक विशेष पद वाले सन्यासियों की संख्या वृद्धि होने पर उनके सम्प्रदाय वृद्ध ने उनमें से किसी को कहीं और किसी को कहीं व्यवस्थित करके उनकी साधना में सहायता की तथा दूसरे नगरों या तीर्थों में भी उनके आवास आदि की व्यवस्था करके अपने मठ से सम्बद्ध ही रखा। अथवा एक ही स्थान पर अपने सम्प्रदाय के कुछ संन्यासियों को अलग अलग भवनों में रखकर किसी भवन का नाम सुमेरूमठ, किसी का नाम गोमठ, किसी का ब्रह्ममठ आदि रखदिया और पुनः उनमें से एक एक के अनेक उपमठ होते चले गये। कभी एक ही शंकराचार्य ने अनेक तीर्थों में पहुँचने पर अपने तीर्थाटन के आवास काल में किसी भवन में रहकर उसे पवित्र किया और बाद में उसके स्वामी ने उस भवन

को उस आचार्य के चरणों में समर्पित कर दिया ! यह भी उनका एक मठ हो गया और उनके ही नाम से यहां का भी मठ प्रसिद्ध हो गया, किन्तु उनके जाने के बाद भवनों के रक्षकों या सम्बद्ध मन्दिरों के पुजारियों ने अपने को कभी शंकराचार्य नहीं घोषित किया। आज भी काशी में श्रृंगेरी आदि के जगद्गुरुओं के मठ हैं, किन्तु यहां के किसी संरक्षक ने अपने को शंकराचार्य नहीं घोषित किया। दुःसाहस तथा सीनाजोरी केवल ऋद्धेश्वरानन्द और उनके तथाकथित स्वयंभू शंकरानन्द ही कर सके हैं। यह तो हुई काशी में स्थित सुमेरूमठ की बात। जहां तक मठाम्नाय महानुशासन में उल्लिखित सुमेरुमठ का प्रश्न है वह तो निःसन्देह भावना के लिये है। वस्तुतः इस प्रतीक मठ से उन विरक्त महा-पुरूषों को सम्बद्ध घोषित किया गया जिनको पूर्वजन्मों के संस्कारों से सन्यासाश्रम के पूर्व ही ज्ञान की फलक मिल गयी। वे प्रत्यक्षतः किसी संन्यासी परम्परा में नहीं आते थे तथापि वे अपने को निराश्रित और प्रदर्शक हीन न समझे अतः उनका आध्यात्मिक सम्बन्ध स्थिर रखने के लिये प्रतीक मठ से भावनात्मक रीति से सम्बद्ध कर दिया गया। जनक, याज्ञवल्क्य आदि ऐसे ही अलिंग सन्यासी थे। इस तथ्य की पुष्टि मठाम्नायोपनिषद के वाक्य............जनक याज्ञवल्क्यादि शुक वामदेवादि" जीवन मुक्ता आदि से भी होती है और इसी प्रसंग में इस वाक्य का अर्थ भी संगत

बैठता हैं। यही बात इस मठ से भी भावना के लिये उत्तरो-त्तर उत्कृष्ट आत्माम्नाय तथा निष्कलाम्नाय के लिये भी ठीक बैठती हैं। अभौतिक सुमेरु से आत्मा और आत्मा से भी उत्कृष्ट उसके स्वरुप के बोधक निष्कल नाम उत्तरोत्तर श्रेष्ठता के वाचक हैं। यह तथ्य इनके उल्लिखित देवी, देवता, तीर्थ सम्प्रदाय आदि के नामों पर विचार करने से भी सिद्ध होता है। इन तीनों मठों से भावनया सम्बद्ध विरक्त महापुरुषों को आचार आदि के लिये भौतिक रुप से प्रथम चारों मठों के आचार्यों के ही निमन्त्रण में रहना विहित है।

'मठाम्नाय महानुशासन' में स्पष्ट उल्लेख हैं–

परिव्राड्चार्यमर्यादा मामकीना यथाविधि।
चतुष्पीठांधिगां सत्तां प्रयुञ्ज्याच्च प्रथक, प्रथक।६।

इसी प्रकार श्रृंगेरी, शारदा ज्योर्तिमठ तथा गोवर्धन पीठों के क्षेत्रों में भावना की दृष्टि से अलग अलग प्रतीकरुप से अनेक सुमेरू, आत्मा तथा निष्कल मठ हो सकते हैं जिनके सम्बद्ध संन्यासी अथवा साधक तत्क्षेत्रों के आचार्यों के शरणागत होंगे। ये व्यक्तिरूप से अलग अलग रहते हुये भी समष्टिरुप से एक एक नाम से ही अभिहित होंगे। यही इनकी मर्यादा है। यही उपर्युक्त श्लोक में प्रयुक्त—

चतुष्पीठाधिगां सत्तां प्रयुञ्ज्याच्च प्रथक प्रथक का तात्पर्यार्थं है।

सातों आम्नायों का कथन करने के बाद यही तात्पर्य 'महानुशासन' के श्लोक–

आम्नायाः कथिता ह्येते यतीनाञ्च प्रथक प्रथक।
ते सर्वे चतुराचार्यो नियोगेन यथाक्रमम् ॥१॥
प्रयोक्तव्याः स्वधर्मेषु शासनीयास्ततोऽन्यथा ॥२॥

में 'ते' सर्वे चतुराचार्याः आदि कहने का विशेष प्रयोजन है।

महामंत्री स्वामी अपने संरक्षक के निर्देशन में अपनी कृति के पृष्ठ संख्या १३-१४ पर आचार्यपीठों के अधीनस्थ क्षेत्रों का उल्लेख करते समय बन्दरबाँट करते करते आँख में धूल झोंक कर डकैती पर उतारू हो गये। इन्होंने यहाँ अपने वेद 'मठाम्नायोपनिषद' मठाम्नायमहानुशासन को प्रमाण न मानकर उद्धरण दिया है।

'श्रीमज्जगद्गुरूशांकर मठ विमर्श' का और प्रथम चारों मठों के प्रभाव क्षेत्रों के कुछ भागों का उल्लेख करके अनुल्लिखित भागों को अपनी झोली में भर लिया। परिशेषन्यायेन अपने तथाकथित सुमेरूमठ के अधीन वर्तमान उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश, राजस्थान और विहार के विस्तृत भूभाग को हड़पना चाहते हैं। जिस सुमेरूमठ का भौतिक अस्तित्व ही नहीं सिद्ध होता उसके प्रभाव क्षेत्र का प्रश्न ही कहां? इसके अतिरिक्त आदि उक्त स्वामी जी को न दिखे तो किसी साक्षर से पढ़वा कर देख लें कि मठाम्नायमहानुशासन

में गोवर्धन तथा शारदा मठों के अधिकार क्षेत्र का स्पष्ट उल्लेख किया हैं कि श्रृंगेरी तथा ज्योतिमठ के प्रभाव क्षेत्रों के विस्तृत होने से उनके सम्बद्ध दो-चार राज्यों का नाम लेकर शेष भागों के लिये 'आदि' पद का प्रयोग किया है। 'आदि' पद केवल इन्हीं दोनों के साथ हैं, पहले दोनो के साथ नहीं। यथा–

कुरु काश्मीर काम्बोज पाञ्चालादि विभागतः ज्योतिर्मंठवशा देशा उदीचीदिगवास्थिताः ॥

तथा

आन्ध्र, द्रविड़, कर्णाट - केरलादि प्रभेदतः।
श्रृंगेरीधीना देशास्ते ह्यवाची दिगवास्थिताः ॥

वाहरे हड़प स्वामी। जिस सुमेरुमठ का भौतिक अस्तित्व नहीं जिसके नाम से आपके मठाम्नायोपनिषद् तक में सूच्यग्र मात्र भी भूमि उल्लिखित नहीं उसके लिये आपने सारा आर्यावर्त और मध्यप्रदेश ही न लिया तथा जिनका स्पष्ट विस्तृत क्षेत्र सर्वत्र लिखित है उनको देश निकाला दे दिया। धन्य है आपकी बुद्धि धन्य हैं आपका विवेक। मध्य प्रदेश और आर्यावर्त का नामतः उल्लेख ज्योतिर्मठ के अधीनस्थ देशों में इस लिये नहीं किया गया क्यों कि यह मठ तो उसी देश में स्थित रहा है। जिसमें वह स्थित है वह देश तो तदधीन स्वतः सिद्ध हैं। दूसरी बात यह भी है कि

विद्वान स्वामी जी आज जिन नामों और सीमाओं से युक्त जिस राज्य को समझ रहें हैं आज से ढाई हजार वर्ष पूर्व उनका क्षेत्र विस्तार और नाम भी भिन्न भिन्न था। प्राचीन भारतीय इतिहास और भूगोल से सर्वथा अपरिचित हड़प स्वामी को कौन समझाये। क्या यह स्व मी जी अपनी बातों को पुष्ट करते समय अपने ही शब्दों में अपने अज्ञान हठ-बादिता का परिचिय (वही पृष्ठ १४) नही देते। कम से कम अपने शेष दो बन्धुओं आत्ममठ तथा निष्कल मठ के लिये ही एकाध इन्च जमीन छोड़ देते। यदि भौतिक अस्तित्व हैं तो उनका भी तो कुछ क्षेत्र होना चाहिये ? कहां है ?

विद्वान स्वामी जी पृष्ठ १४ पर तृतीय अनुच्छेद में कहते हैं 'वर्तमान में मठानुशासन भी सुव्यवस्थित नहीं हैं। उदाह-रणार्थ गोवर्धनमठ के आचार्य पद पर वन या अरण्य नामा सन्यासी का शारदा मठ में आश्रम या तीर्थ नामा, ज्योतिर्मठ में पर्वत नामा, श्रृंगेरीमठ में भारतीय नाम सन्यासी का अभिषेक होना चाहिये।

इस व्यवस्था के परिवर्तन का निषेध वचन भी वहीं पर उल्लिखित है। अन्य प्रधान मठों को अव्यवस्थित कहने वाले स्वामी जी महाराज अपने मालिक तथाकथित सुमेरू-पीठाधीश्वर बन बैठे स्वामी शंकरानन्द सरस्वती की

वलीवर्द काया और १२ इन्च लम्बे नाम को कैसे नहीं परख पाये। उनके नाम का सरस्वती पद उनकी सुमेरुपीठ का जमीन्दार किस हैंसियत से वना रहा है ? क्या वह सत्य और ज्ञान पद से मुक्त हैं ? इन दोनों पदों का पट्टा मढ़ा लेने के बाद भी क्या वह दशनामियों में आ सकेंगे ? दूसरे की आँख कोंचने के लिये ऊंगली उठाने वाले पहले अपने मुंह पर ही थप्पड़ की आजमाइश क्यों नहीं कर लेते ?

विद्वान स्वामी जी पृष्ठ १४ के अन्तिम अनुच्छेद में लिखते हैं कुछ पण्डित मन्य लोग कहते हैं चार वर्ण, चार आश्रम हैं अतः चार मठ हैं आदि। यह सब कथन अन्ध विश्वास पलक एवं युक्ति शून्य है। इस प्रसंग में निवेदन है कि क्या पूज्य स्वामी जी पञ्चम मठ सिद्धि करके अपने संरक्षक को आसीन कराकर अब स्वयं को पंचमवर्ण और पंचम आश्रम का भी सिद्ध करना चाहते हैं ? यदि यही अभीष्ट है तो अपनी उदारता का परिचय देते रहें। धन्य है युक्ति। सत्य तो यह है कि जिस प्रकार चार वर्ण, चार आश्रम और चार वेद हैं, उसी प्रकार चारों दिशाओं में चार आचार्य पीठ भी हैं जिनका भूमि पर अस्तित्व है।

सारांश यह है कि गली गली में पट्टा रंगा कर भावातीत समाधि वालो तथा स्वयंभू भगवानों की दलाली करके

घूम-घूम कर आद्य शंकराचार्य के नाम पर अपनी अहंमन्यता दुराग्रह और सदाचार से कालिख पोतने वाले धूर्तों का जब तक धर्मप्राण जनता दमन नहीं करेगी तब तक भारत में पाखण्ड खुफियागिरी चलती रहेगी। दुःख है कि जिन लोगों को संन्यास लेने की सामान्य पात्रता भी नहीं है, वे जगद्-गुरु शंकराचार्य ही बन रहे हैं जिस गली में देखो ये उचक्के दण्ड को डण्डा समझे हुये घूम रहे हैं। नालियों के कीड़ों की भांति जगह जगह पर तथाकथित शंकराचार्य नामधारी बिलबिला रहे हैं। सुमेरूपीठ को देखा ही, भानपुरा में रामाश्रम नाम के तथाकथित कार्यरत और वहीं के एक तथा कथित निवृत शंकराचार्य भी बैठे हैं जो अपने को ज्योतिर्मठ का घोषित करते हैं। जबकि अभी इस पीठ के लिए शान्तानन्द, विष्णुदेवानन्द और द्वारकेशानन्द दावेदार बने ही घूम रहे हैं। सुप्रसिद्ध हिन्दू परिषद के एक तथाकथित स्वामी सत्यमित्रानन्द भी भानपुरा मठ से सम्बद्ध कहे जाते हैं।

अहमदाबाद से ४० मील लगभग धोलका नाम का एक स्थान है, जहां से सदानन्द गिरि नाम का एक साधु मध्य-प्रदेश के भानपुरा नामक एक ग्राम में गया, वहां कुछ लोगों को शिष्य बनाया और स्वयं को ज्योतिर्मठ का शंकराचार्य कहने लगा। भानपुरा में ही किसी बनियां का मकान खरीद कर उसको अपना संचार मठ घोषित कर दिया। चालीस

वर्ष की उम्र में उसने विवाह कर लिया जिससे उसकी छः कन्यायें उत्पन्न हुई।

सदानन्द गिरि के मर जाने पर उसकी स्त्री शंकराचार्याणी बनकर गुजरात में घूमती रही। जब उसका विरोध हुआ तो उसने स्वामी वेदव्यासानन्द के शिष्य सत्यमित्रानन्द को ले जाकर भानपुरा का शंकराचार्य घोषित कर दिया और अपनी एक लड़की उसके साथ रख दी। जो सदानन्द गिरि का दण्ड गद्दी में रखा था उक्त महिला नें वह दण्ड सत्यमित्रानन्द को पकड़ा दिया।

सत्यमित्रानन्द स्वयं को शंकराचार्य कहते हुपे जनसंघ का कार्य करने लगे और विदेश यात्रा भी की। बाद में उन्होंने दण्ड छोड़कर स्वयं को निवृत शंकराचार्य कहना प्रारम्भ कर दिया। इसके पश्चात् उसी महिला ने लुधियाना के स्वामी रामाश्रम को वहां का शंकराचार्य घोषित किया। अब स्वामी रामाश्रम स्वय को ज्योतिर्मठ का शंकराचार्य कहते हुये घूम रहे हैं। भानपुरा का मठ आज कल प्याज रखने की गोदाम वना हैं।

एक बार मध्यप्रदेश के किसी अखबार में छपा था "शंकराचाचार्य की लड़की का विवाह खादी वाले के लड़के के साथ"। पाठक स्वयं सोचें इतना बड़ा उपहास शंकराचार्य की महान् पीठों का ये छद्मवेषी कर रहे हैं।

ऊपर कह ही चुका हूं कि काशी सुमेरूपीठाधीश्वर बनकर ओमप्रकाशानन्द भी शंकरानन्द की भाँति पांव से जमीन खरोंच रहे हैं। जिधर देखिये उधर बरसाती मेंढ़क की भांति हर ताल-तलैया में शंकराचार्य नामधारी टर्रा रहे हैं।

हे तथाकथित महात्माओ, भगवान के लिये उस वेष को न लज्जित करो जिसके चलते खुले सांड सा चर चर करके पैंतरे बाजी कर रहे हो, उस संस्कृति को मत कलंकित करो जिसमें 'दण्ड ग्रहण मात्रेण नरो नारायणो भवेत्' कहा गया कम हैं, से कम एकता के उस प्रयत्न तरू के भक्षक कीट तो मत बनो जिसे परिस्थिति समझकर कई सौ वर्षो बाद आज चारों शंकराचार्य एक साथ अनेक स्थानों और समयों पर मिल मिलकर अंकुरित, पल्लवित पुष्पित और फलित करना चाहते हैं। आप लोगों ने पूर्व आश्रमों में जो किया सो किया अब संन्यासी का वेष धारण करने के बाद 'हेराफेरी' तो बन्द करो हिन्दुत्व को नाम शेष मत करो। एक क्षेत्र में अभिषिक्त होकर एक से अधिक शंकराचार्य नहीं हो सकते, क्योंकि जिनके नाम पर आप लोग विछुआ गढ़ा रहे हैं, उसी आद्य श्री शंकराचार्य ने आदेश दिया है 'सेतु' में —

एक एवाभिषेच्यः स्यादन्ते लक्षणं सम्मतः।
तत्तत्पीठे क्रमेणैव न बहु युज्यते क्वचित् ॥१४॥

—●—

धर्म सम्राट् पूज्य स्वामी श्री करपात्री जी द्वारा शंकरानंद जी को

चेतावनी

दैनिक सन्मार्ग काशी में ३१-७-८० को प्रकाशित सुमेरूमठ के उत्सव के समाचार पर अ० भा० धर्मसंघ के संस्थापक धर्म सम्राट पूज्य पाद स्वामी श्री करपात्री जी महाराज ने पत्रकार वार्ता में श्री शंकरानन्द को चेतावनी देते हुये कहा —

उन्होंने (शंकरानन्द जी ने) अनेक सभाओं में यह कहा कि काशी पीठ केन्द्रीय पीठ है एवन् अन्य पीठ प्रान्तीय पीठ हैं फल स्वरुप पीठों में आपस में रागद्वेष. निंदा, स्तुति विघटन होने लगा है ...... उन्हें धर्मसंघ के नियम एवम् नियंत्रण स्वीकार्य नही हैं। धर्मसंघ के हितों के विपरीत सतत आचरण करने से धर्मसंघ चाहता है कि उन्हें पदच्युत कर...... ....

स्वामी शंकरानन्द जी इस समय दण्डी सन्यासियों को भड़काते रहते हैं कि धर्मसंघ में एवम् उसके द्वारा आमन्त्रित सभाओं में न जाएं। दूसरी तरफ वे धर्मसंघ के प्रभाव एवम् उसकी सुविधाओं का उपयोग कर रहें हैं.............

स्वामी शंकरानन्द को यह समझलेना चाहिये कि विशिष्ट दण्डी स्वामी लोग शृंगेरी, गोवर्धन, शारदा तथा ज्योतिष पीठ से सम्बंधित हैं ....अतः कुछ अल्प समुदाय के सन्यासियों के बल पर सुमेरूपीठ की स्थापना मान्यता तथा उसकी मर्यादा की रक्षा नहीं हो सकती स्वयं स्वामी शंकरानन्द जी शृंगेरी मठ से सम्बद्ध हैं ......उन्हें धर्मसंघ का प्रतिद्वन्दी घोषित करने की आदत से विरक्त रहना चाहिये........ इतना तो स्पष्ट है कि धर्म का प्रचार प्रसार हर प्रकार से छल कपट एवं गुट बन्दी से दूर रहकर ही किया जा सकता है इन सब कारणों को देखते हुये उन्हें धर्मसंघ शिष्ट मण्डल परिसर से हट जाने को कहकर धर्मसंघ ने उचित ही कार्य किया है।

मुद्रक : नेमा प्रिंटिंग प्रेस, सावरकर पथ विदिशा (म० प्र०)